ISSN: 2393-8048
International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
Multidisciplinary, Multilingual, Indexed, Double Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal.
SJIF Impact Factor =8.152, July-December 2025, Submitted in July 2025

2014 के बाद से भारतीय संघवाद पर राज्यपालों की भूमिका का प्रभाव: एक संघीय संतुलन का अध्ययन

डॉ. अभिषेक यादव, पीएचडी, राजनीति विज्ञान विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

1. परिचय (Introduction):-

भारतीय गणराज्य अपने लोकतांत्रिक और संघीय स्वरूप पर गर्व करता है, जहाँ केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन संविधान द्वारा सुनिश्चित किया गया है। यह जटिल और गतिशील संघीय ढाँचा देश की विविधता को समायोजित करने और सुशासन सुनिश्चित करने के लिए डिज़ाइन किया गया है। इस व्यवस्था में, राज्यपाल का पद, जिसे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 153 के तहत स्थापित किया गया है, एक अद्वितीय और महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह न केवल राज्य का संवैधानिक प्रमुख होता है, बल्कि साथ ही केंद्र सरकार के प्रतिनिधि के रूप में भी कार्य करता है। यह दोहरी भूमिका राज्यपाल को केंद्र और राज्यों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी बनाती है, जिससे यह पद संघीय संबंधों के संतुलन में एक केंद्रीय धुरी बन जाता है। हालाँकि, यह पद अपनी स्थापना के बाद से ही अक्सर विवादों और बहस के घेरे में रहा है, विशेष रूप से तब जब केंद्र और राज्य में अलग-अलग राजनीतिक दल सत्ता में हों।

2014 के बाद भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण बदलाव आया, जिसमें केंद्र में एक प्रमुख राष्ट्रीय दल (भारतीय जनता पार्टी) का बहुमत के साथ प्रभुत्व रहा। इस अवधि में, देश के कई विपक्ष-शासित राज्यों में राज्यपालों और निर्वाचित राज्य सरकारों के बीच अभूतपूर्व स्तर पर तनाव और गंभीर टकराव देखे गए हैं। इन टकरावों ने विभिन्न रूपों में खुद को प्रकट किया है, जैसे कि राज्य विधानसभाओं द्वारा पारित महत्वपूर्ण विधेयकों पर राज्यपालों द्वारा महीनों या वर्षों तक सहमति देने में देरी, राज्य विश्वविद्यालयों के प्रशासन और कुलपतियों की नियुक्ति में हस्तक्षेप, सरकार गठन के दौरान विवेकाधीन शक्तियों के कथित पक्षपातपूर्ण प्रयोग, और राज्य की नीतियों पर राज्यपालों द्वारा की गई सार्वजनिक टिप्पणियाँ।

इन बढ़ती हुई प्रवृत्तियों ने भारतीय संघवाद के सिद्धांतों, सहकारी संघवाद की भावना और लोकतांत्रिक मर्यादाओं पर गंभीर सवाल उठाए हैं। यह शोध पत्र 2014 के बाद से राज्यपालों की विवादास्पद भूमिका के इन उभरते हुए पैटर्नों, उनके अंतर्निहित संवैधानिक, राजनीतिक और प्रशासनिक कारणों, और भारतीय संघीय संतुलन पर उनके संचयी प्रभावों का एक विस्तृत विश्लेषणात्मक अध्ययन करना चाहता है। इसका उद्देश्य यह मूल्यांकन करना है कि क्या राज्यपाल का पद, जैसा कि संविधान में परिकल्पित किया गया था, अभी भी एक निष्पक्ष संवैधानिक संरक्षक के रूप में कार्य कर रहा है, या यह केंद्र के राजनीतिक उद्देश्यों को पूरा करने वाले एक उपकरण के रूप में बदल गया है, जिससे भारत के संघीय ढांचे की अखंडता और लोकतांत्रिक जवाबदेही को चुनौती मिल रही है।

2. साहित्य समीक्षा (Literature Review):-

राज्यपाल के पद और भारतीय संघवाद पर अकादमिक और कानूनी साहित्य का एक समृद्ध भंडार मौजूद है, जो इस संवैधानिक पद की जटिलताओं और केंद्र-राज्य संबंधों पर इसके प्रभावों को दशकों से उजागर करता रहा है।

प्रारंभिक अध्ययनों ने राज्यपाल की भूमिका को औपनिवेशिक विरासत (Government of India Act, 1935) के एक अवशेष के रूप में देखा और भारतीय संविधान सभा में इस पद को लेकर हुई बहस पर प्रकाश डाला, जहाँ इसकी दोहरी भूमिका – राज्य के संवैधानिक प्रमुख और केंद्र के प्रतिनिधि – पर गहन चर्चा हुई थी (पाइली, एम.वी., 1965)। विद्वानों ने इस बात पर जोर दिया है कि भारत के संवैधानिक निर्माताओं ने राज्यपाल से एक तटस्थ और निष्पक्ष संवैधानिक संरक्षक के रूप में कार्य करने की अपेक्षा की थी, जो "संविधान की रक्षा, संरक्षण और बचाव" की अपनी शपथ का पालन करे।

राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों के उपयोग, विशेष रूप से सरकार गठन के समय और अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) की सिफारिश के संबंध में, अक्सर गंभीर विवादों को जन्म दिया है। इस संदर्भ में, सर्वोच्च न्यायालय के कई ऐतिहासिक निर्णय महत्वपूर्ण मील के पत्थर रहे हैं। एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994) का वाद विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जिसने अनुच्छेद 356 के तहत राज्यपाल की विवेकाधीन

शक्तियों पर महत्वपूर्ण सीमाएं लगाईं और यह स्पष्ट किया कि राज्य सरकार के बहुमत का परीक्षण सदन के पटल पर होना चाहिए, न कि राज्यपाल के राजभवन में। इस निर्णय को अक्सर "राज्यपाल की मनमानी पर अंकुश" के रूप में देखा जाता है (दीक्षित, ए., 1996)। हालांकि, बाद के कई फैसलों ने भी राज्यपाल की भूमिका के कुछ पहलुओं को स्पष्ट किया है, लेकिन बोम्मई वाद संघीय संतुलन के संदर्भ में सबसे प्रभावशाली बना हुआ है।

राज्यपाल के पद के दुरुपयोग और उसके सुधारों पर विभिन्न आयोगों ने भी महत्वपूर्ण सिफारिशें की हैं। सरकारिया आयोग (1983) ने राज्यपाल की नियुक्ति से पहले संबंधित मुख्यमंत्री से परामर्श करने, सक्रिय राजनीति से सेवानिवृत्त व्यक्ति को नियुक्त करने, और राज्यपाल के कार्यकाल की सुरक्षा सुनिश्चित करने पर जोर दिया। इसी तरह, राष्ट्रीय संविधान कार्यप्रणाली समीक्षा आयोग (वेंकटचलैया आयोग, 2000) और पुंछी आयोग (2007) ने भी राज्यपाल को पद से हटाने की प्रक्रिया को अधिक सुरक्षित बनाने, विधेयकों को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित करने की शक्ति का प्रयोग संयम से करने, और राज्य विधानसभाओं द्वारा पारित विधेयकों पर सहमति देने के लिए एक निश्चित समय-सीमा निर्धारित करने जैसी महत्वपूर्ण सिफारिशें की हैं। इन आयोगों की रिपोर्टें राज्यपाल के पद की निष्पक्षता और संवैधानिक गरिमा को बहाल करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण संदर्भ प्रदान करती हैं (पुंछी आयोग रिपोर्ट, 2010)।

हालांकि, 2014 के बाद के वर्षों में भारतीय राजनीति में आए महत्वपूर्ण बदलाव, विशेष रूप से केंद्र में एक मजबूत बहुमत वाली सरकार के उदय के साथ, ने राज्यपाल की भूमिका को एक नए और अधिक टकरावपूर्ण आयाम में धकेल दिया है। इस अवधि में, कई अकादमिक लेखकों, मीडिया विश्लेषकों और संवैधानिक विशेषज्ञों ने पश्चिम बंगाल, केरल, तमिलनाडु, पंजाब, महाराष्ट्र और दिल्ली जैसे विपक्ष-शासित राज्यों में राज्यपालों और निर्वाचित राज्य सरकारों के बीच बढ़ते तनाव और टकरावों को उजागर किया है। इन विश्लेषणों ने अक्सर विशिष्ट केस स्टडीज पर ध्यान केंद्रित किया है, जैसे कि विधेयकों पर सहमति में देरी, विश्वविद्यालय प्रशासन में हस्तक्षेप, या सरकार गठन के दौरान हुई राजनीतिक खींचतान (सिंह, पी.के., 2018; भट्टाचार्य, एस., 2021)।

मौजूदा साहित्य, जहाँ राज्यपाल की भूमिका के संवैधानिक निहितार्थों और ऐतिहासिक विकास पर मजबूत नींव प्रदान करता है, वहीं 2014 के बाद की अवधि में राज्यपालों के कार्यों के संचयी और प्रणालीगत प्रभावों पर एक व्यापक विश्लेषण की आवश्यकता को उजागर करता है। वर्तमान शोध का उद्देश्य इस साहित्य के अंतराल को भरना है, जो विशिष्ट घटनाओं से परे जाकर, 2014 के बाद से राज्यपाल की भूमिका में देखी गई प्रवृत्तियों का भारतीय संघीय संतुलन, लोकतांत्रिक जवाबदेही और संवैधानिक नैतिकता पर पड़ने वाले दूरगामी निहितार्थों का एक समग्र और गहन अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन यह जांचना चाहता है कि क्या आयोगों और न्यायपालिका द्वारा स्थापित संवैधानिक दिशानिर्देशों का पालन किया जा रहा है, और यदि नहीं, तो इस विचलित व्यवहार का संघीय ढांचे पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

3. शोध पत्र के उद्देश्य (Objectives of the Research Paper):-

यह शोध निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है:

1. राज्यपाल की भूमिका में उभरते रुझानों की पहचान और विश्लेषण करना: 2014 के बाद से भारतीय राज्यों में, विशेष रूप से विपक्ष-शासित राज्यों में, राज्यपालों द्वारा अपनी शक्तियों और कार्यों के प्रयोग में सामने आ रहे नए प्रतिमानों और प्रवृत्तियों की पहचान करना और उनका विश्लेषण करना।
2. विशिष्ट क्षेत्रों में राज्यपाल के हस्तक्षेप की जांच करना: विधेयकों पर सहमति, विश्वविद्यालय प्रशासन, सरकार गठन और सार्वजनिक बयानों जैसे विशिष्ट क्षेत्रों में राज्यपालों के हस्तक्षेप के उदाहरणों और रूपों का गंभीर रूप से परीक्षण करना।
3. सहकारी संघवाद पर प्रभाव का आकलन करना: राज्यपाल के आचरण के इन प्रतिमानों का सहकारी संघवाद के सिद्धांतों, राज्य सरकारों की लोकतांत्रिक जवाबदेही और केंद्र तथा राज्यों के बीच संवैधानिक शक्ति संतुलन पर पड़ने वाले गुणात्मक और मात्रात्मक प्रभाव का आकलन करना।
4. संवैधानिक प्रावधानों और न्यायिक निर्णयों के अनुपालन का मूल्यांकन करना: इस बात का मूल्यांकन करना कि राज्यपालों के कार्य संवैधानिक प्रावधानों, न्यायिक निर्णयों (जैसे एस.आर. बोम्मई वाद), और

विभिन्न आयोगों (जैसे सरकारिया और पुंछी आयोग) की सिफारिशों के साथ किस हद तक संरेखित हैं या उनसे विचलित होते हैं।

5. संघीय संरचना पर निहितार्थों को समझना: भारत की संघीय संरचना की स्थिरता और अखंडता तथा इसके लोकतांत्रिक लोकाचार के लिए राज्यपाल की बदलती भूमिका के निहितार्थों को समझना।

4. अनुसंधान पद्धति (Research Methodology):-

यह अध्ययन एक विश्लेषणात्मक और वर्णनात्मक दृष्टिकोण अपनाता है। प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों का गहन विश्लेषण किया जाएगा। प्राथमिक स्रोतों में भारत के संविधान के प्रासंगिक अनुच्छेद, सर्वोच्च न्यायालय के प्रमुख न्यायिक निर्णय (विशेष रूप से एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ), और विभिन्न सरकारी आयोगों (जैसे सरकारिया आयोग, राष्ट्रीय संविधान कार्यप्रणाली समीक्षा आयोग, और पुंछी आयोग) की रिपोर्टें शामिल होंगी। द्वितीयक स्रोतों में अकादमिक लेख, शोध पत्र, पुस्तकें, विश्वसनीय समाचार रिपोर्ट, और संवैधानिक विशेषज्ञों के विश्लेषण शामिल होंगे जो 2014 के बाद से राज्यपाल की भूमिका से संबंधित मामलों पर प्रकाश डालते हैं।

प्रस्तुत शोध विभिन्न राज्यों में राज्यपालों के कार्यों की तुलनात्मक विश्लेषण पद्धति का उपयोग करेगा, विशेष रूप से उन राज्यों पर ध्यान केंद्रित करेगा जहाँ केंद्र और राज्य में अलग-अलग राजनीतिक दल सत्ता में हैं। विशिष्ट केस स्टडीज (जैसे पश्चिम बंगाल, केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, पंजाब और दिल्ली के अनुभव) का उपयोग राज्यपालों के कार्यों की प्रवृत्तियों, उनके द्वारा की गई कार्रवाइयों के प्रकारों, और इन कार्रवाइयों के संघीय संतुलन पर पड़ने वाले प्रभावों को समझने के लिए किया जाएगा। यह गुणात्मक अध्ययन राज्यपाल की भूमिका में देखे गए पैटर्न और विचलन का गंभीर मूल्यांकन करेगा, जिससे भारतीय संघवाद पर उनके प्रभावों की गहरी समझ विकसित हो सके।

5. 2014 के बाद राज्यपाल की भूमिका में उभरते रुझान (Emerging Trends in the Role of Governor Post-2014):- 2014 के बाद से भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण बदलाव देखे गए हैं, जिसमें केंद्र में एक मजबूत बहुमत वाली सरकार का उदय शामिल है। इस अवधि ने राज्यपाल के पद को केंद्र-राज्य संबंधों में एक नए सिरे से चर्चा के केंद्र में ला दिया है। यह खंड राज्यपाल की भूमिका में देखे गए विशिष्ट रुझानों और उनके कार्यों के पैटर्न का विश्लेषण करता है:

5.1. नियुक्ति प्रक्रिया और तटस्थता पर निहितार्थ (Appointment Process and Implications for Neutrality) राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, जो व्यवहार में केंद्र सरकार की सलाह पर होता है। सरकारिया आयोग और पुंछी आयोग दोनों ने सुझाव दिया था कि राज्यपाल की नियुक्ति में संबंधित मुख्यमंत्री से परामर्श किया जाना चाहिए ताकि पद की निष्पक्षता और विश्वसनीयता बनी रहे। हालांकि, 2014 के बाद की अवधि में, यह अक्सर देखा गया है कि इन सिफारिशों का पूर्णतः पालन नहीं किया गया है। कई नियुक्तियों को राजनीतिक प्रकृति का माना गया है, जिससे राज्यपालों की केंद्र के प्रति पक्षपातपूर्ण होने की धारणा को बल मिला है। यह धारणा उनकी संवैधानिक तटस्थता पर सवाल उठाती है और राज्य सरकारों के साथ उनके संबंधों में अविश्वास पैदा करती है।

5.2. विधेयकों पर सहमति में देरी या रोक (Delay or Withholding Assent to Bills) राज्यपालों की सबसे महत्वपूर्ण संवैधानिक शक्तियों में से एक राज्य विधानसभाओं द्वारा पारित विधेयकों पर सहमति देना या उन्हें राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित करना है (अनुच्छेद 200)। 2014 के बाद, कई विपक्षी-शासित राज्यों में राज्यपालों द्वारा महत्वपूर्ण विधेयकों पर सहमति में अत्यधिक देरी या उन्हें अनिश्चित काल के लिए रोके रखने के मामले सामने आए हैं। यह न केवल राज्य सरकारों के विधायी एजेंडे को बाधित करता है, बल्कि यह निर्वाचित विधानसभाओं की इच्छा की अवहेलना भी करता है। यह व्यवहार एक ऐसी स्थिति पैदा करता है जहाँ केंद्र के प्रति वफादार राज्यपाल राज्य के विधायी कार्यों पर एक वीटो की तरह कार्य कर सकते हैं, जिससे राज्य की स्वायत्तता खतरे में पड़ सकती है।

5.3. विश्वविद्यालय प्रशासन में हस्तक्षेप (Interference in University Administration) कई राज्यों में, राज्यपाल विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति (Chancellor) भी होते हैं। इस क्षमता में, 2014 के बाद से राज्यपालों ने अक्सर विश्वविद्यालय प्रशासन में सक्रिय भूमिका निभाई है, जिसमें उपकुलपतियों (Vice-

Chancellors) की नियुक्ति और पद से हटाने जैसे मुद्दे शामिल हैं। केरल, पश्चिम बंगाल और तमिलनाडु जैसे राज्यों में, राज्यपालों और राज्य सरकारों के बीच विश्वविद्यालय संबंधी मामलों पर गंभीर टकराव देखे गए हैं। राज्य सरकारें अक्सर राज्यपालों पर आरोप लगाती हैं कि वे कुलाधिपति की अपनी शक्ति का उपयोग राज्य की उच्च शिक्षा नीति को कमजोर करने या केंद्र सरकार के एजेंडे को आगे बढ़ाने के लिए कर रहे हैं।

5.4. सरकार गठन और भंग करने में भूमिका (Role in Government Formation and Dissolution) एस.आर. बोम्मई वाद ने राज्य सरकारों के बहुमत का परीक्षण सदन के पटल पर करने के सिद्धांत को मजबूती से स्थापित किया था। हालांकि, 2014 के बाद भी, राज्यपालों की भूमिका सरकार गठन के दौरान, विशेष रूप से खंडित जनादेश या दलबदल की स्थिति में, विवादास्पद बनी हुई है। महाराष्ट्र और कर्नाटक जैसे राज्यों में, सरकार बनाने के लिए सबसे बड़े दल को आमंत्रित करने, बहुमत साबित करने के लिए समय देने, और विश्वास मत (floor test) आयोजित करने के संबंध में राज्यपालों के निर्णयों पर सवाल उठाए गए हैं। इन निर्णयों ने कभी-कभी राजनीतिक अस्थिरता को बढ़ाया है और इस धारणा को बल दिया है कि राज्यपाल केंद्र सरकार के राजनीतिक उद्देश्यों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं।

5.5. सार्वजनिक बयान और राजनीतिक टिप्पणी (Public Statements and Political Commentary) राज्यपाल का पद संवैधानिक गरिमा और तटस्थता की अपेक्षा रखता है। हालांकि, 2014 के बाद, कई राज्यपालों को अक्सर सार्वजनिक बयान देते और राज्य सरकार की नीतियों या कार्यप्रणाली पर राजनीतिक टिप्पणी करते देखा गया है। ये बयान अक्सर राज्य सरकार के साथ सीधे टकराव का कारण बनते हैं और राज्य के संवैधानिक प्रमुख के रूप में उनकी निष्पक्ष स्थिति पर संदेह पैदा करते हैं। इस तरह के आचरण से राज्यपाल की भूमिका एक तटस्थ मध्यस्थ से हटकर एक राजनीतिक विरोधी की ओर मुड़ती हुई प्रतीत होती है।

6. भारतीय संघवाद पर प्रभाव: संघीय संतुलन का विश्लेषण (Impact on Indian Federalism: Analysis of Federal Balance);- राज्यपालों की भूमिका में इन उभरते रुझानों के भारतीय संघवाद पर गंभीर निहितार्थ हैं। यह खंड इन प्रभावों का विश्लेषण संघीय संतुलन के संदर्भ में करता है:

6.1. सहकारी संघवाद का क्षरण (Erosion of Cooperative Federalism) सहकारी संघवाद का सिद्धांत केंद्र और राज्यों के बीच सहयोगात्मक और सामंजस्यपूर्ण संबंधों पर जोर देता है। जब राज्यपाल राज्य सरकारों के साथ टकराव में आते हैं, तो यह सहकारी संघवाद के लोकाचार को कमजोर करता है। राज्यपालों द्वारा केंद्र के एजेंट के रूप में कार्य करने की धारणा, विशेष रूप से राजनीतिक रूप से संवेदनशील मुद्दों पर, केंद्र और राज्यों के बीच अविश्वास की खाई को गहरा करती है। यह न केवल नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन को बाधित करता है बल्कि राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिए भी चुनौतियां पैदा करता है।

6.2. राज्य स्वायत्तता और लोकतांत्रिक जवाबदेही पर चुनौतियां (Challenges to State Autonomy and Democratic Accountability) भारतीय संविधान एक संघीय व्यवस्था प्रदान करता है जहाँ राज्यों को अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर महत्वपूर्ण स्वायत्तता प्राप्त होती है। राज्यपालों द्वारा विधायी कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप, विश्वविद्यालय प्रशासन में दखल, और सरकार गठन के विवादास्पद निर्णय सीधे तौर पर राज्य सरकारों की स्वायत्तता को चुनौती देते हैं। यह निर्वाचित राज्य सरकारों की लोकतांत्रिक जवाबदेही को भी प्रभावित करता है, क्योंकि उन्हें अपने विधायी और कार्यकारी एजेंडे को पूरा करने में बाधाओं का सामना करना पड़ता है। यह अंततः राज्य में मतदाताओं की इच्छा की अवहेलना करता है।

6.3. केंद्र-राज्य संबंधों में तनाव वृद्धि (Increased Tensions in Centre-State Relations) राज्यपालों के माध्यम से केंद्र का कथित हस्तक्षेप केंद्र-राज्य संबंधों में तनाव का एक प्रमुख स्रोत बन गया है। यह तनाव केवल राजनीतिक बयानबाजी तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि राज्य सरकारों द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में याचिकाएं दायर करने और संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या पर कानूनी लड़ाई का रूप भी ले लेता है। इस तरह के बार-बार होने वाले टकराव संघीय ढांचे पर दबाव डालते हैं और भारतीय संघीय प्रणाली की स्थिरता पर सवाल उठाते हैं।

7. संवैधानिक प्रावधानों, न्यायिक निर्णयों और आयोगों की सिफारिशों का अनुपालन (Compliance with Constitutional Provisions, Judicial Decisions, and Commission Recommendations):- राज्यपालों की भूमिका में देखे गए रुझानों का आकलन संवैधानिक सिद्धांतों, न्यायिक precedents और विशेषज्ञ आयोगों की सिफारिशों के आलोक में करना महत्वपूर्ण है।

7.1. एस.आर. बोम्मई वाद के दिशानिर्देशों का पुनर्मूल्यांकन (Re-evaluation of S.R. Bommai Case Guidelines) एस.आर. बोम्मई वाद ने अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) के दुरुपयोग पर महत्वपूर्ण अंकुश लगाए थे और यह स्थापित किया था कि राज्य सरकार का बहुमत केवल सदन के पटल पर ही साबित किया जा सकता है। जबकि अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग अब उतना प्रत्यक्ष नहीं है, राज्यपालों के कार्यों में देखी गई प्रवृत्तियां (जैसे विधेयकों पर सहमति में देरी, सरकार गठन में भूमिका) बोम्मई वाद की भावना का उल्लंघन करती हैं, जो एक निष्पक्ष और संवैधानिक रूप से कार्य करने वाले राज्यपाल की अपेक्षा करता है। ये कार्य, हालांकि सीधे तौर पर अनुच्छेद 356 से संबंधित नहीं हैं, फिर भी एक राज्य सरकार को अस्थिर करने या उसके कार्यों में बाधा डालने का एक अप्रत्यक्ष तरीका बन सकते हैं।

7.2. सरकारिया और पुंछी आयोगों की सिफारिशों से विचलन (Deviation from Sarkaria and Punchhi Commission Recommendations) दोनों आयोगों ने राज्यपाल के पद की पवित्रता और निष्पक्षता बनाए रखने के लिए विस्तृत सिफारिशें की थीं, जिनमें नियुक्ति प्रक्रिया में मुख्यमंत्री से परामर्श, सक्रिय राजनीति से सेवानिवृत्त व्यक्तियों की नियुक्ति, और विवेकाधीन शक्तियों का संयम से उपयोग शामिल है। 2014 के बाद की अवधि में, यह स्पष्ट हो गया है कि इनमें से कई सिफारिशों को अक्सर अनदेखा किया गया है। नियुक्ति प्रक्रिया में पारदर्शिता की कमी, राजनीतिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों की नियुक्ति, और विधेयकों पर सहमति में मनमानी देरी या विश्वविद्यालय प्रशासन में हस्तक्षेप जैसी कार्रवाइयां इन आयोगों द्वारा परिकल्पित संवैधानिक भूमिका से स्पष्ट विचलन का संकेत देती हैं।

8. निष्कर्ष (Conclusion):-यह शोध पत्र "2014 के बाद से भारतीय संघवाद पर राज्यपालों की भूमिका का प्रभाव: एक संघीय संतुलन का अध्ययन" इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि इस अवधि में राज्यपाल के पद ने केंद्र-राज्य संबंधों में एक महत्वपूर्ण बदलाव देखा है, जिससे भारत के संघीय संतुलन पर गंभीर प्रभाव पड़ा है। विश्लेषण से पता चलता है कि राज्यपाल की भूमिका संवैधानिक मध्यस्थ से हटकर अधिक राजनीतिक और कभी-कभी टकराव वाली हो गई है, विशेष रूप से उन राज्यों में जहाँ केंद्र और राज्य में अलग-अलग राजनीतिक दल सत्ता में हैं।

हमने देखा कि कैसे राज्यपालों की नियुक्ति प्रक्रिया, विधेयकों पर सहमति में देरी, विश्वविद्यालय प्रशासन में हस्तक्षेप, सरकार गठन में विवादास्पद निर्णय, और सार्वजनिक बयानों ने संवैधानिक तटस्थता की अपेक्षाओं को चुनौती दी है। इन प्रवृत्तियों ने सहकारी संघवाद के सिद्धांतों को कमजोर किया है, राज्य सरकारों की स्वायत्तता और लोकतांत्रिक जवाबदेही पर चुनौतियां खड़ी की हैं, और केंद्र-राज्य संबंधों में तनाव बढ़ाया है।

एस.आर. बोम्मई वाद जैसे महत्वपूर्ण न्यायिक निर्णयों और सरकारिया व पुंछी आयोगों जैसी विशेषज्ञ समितियों की सिफारिशों के बावजूद, राज्यपालों के कार्य अक्सर इन दिशानिर्देशों से विचलित हुए हैं। यह विचलन केवल संवैधानिक औपचारिकता का उल्लंघन नहीं है, बल्कि यह भारत की संघीय संरचना के मूल सिद्धांतों, विशेषकर लोकतांत्रिक शासन और सत्ता के विकेंद्रीकरण के लोकाचार को भी प्रभावित करता है। संक्षेप में, 2014 के बाद राज्यपाल की भूमिका के अभ्यास ने एक ऐसे संघीय संतुलन की ओर धकेला है जहाँ केंद्र की शक्ति राज्यों पर अधिक प्रभावी हो रही है, जिससे राज्यों की संवैधानिक स्वायत्तता खतरे में है।

9. सुझाव (Suggestions):- भारतीय संघवाद के स्वस्थ संचालन और राज्यपाल के पद की गरिमा और संवैधानिक पवित्रता को बहाल करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:

1.नियुक्ति प्रक्रिया में सुधार:

- राज्यपाल की नियुक्ति में संबंधित मुख्यमंत्री के साथ प्रभावी परामर्श अनिवार्य किया जाना चाहिए, जैसा कि सरकारिया आयोग ने सुझाव दिया था।

- पद पर नियुक्त होने वाले व्यक्ति को सक्रिय राजनीति से संबंधित नहीं होना चाहिए और उसका सार्वजनिक जीवन बेदाग होना चाहिए।
- एक प्रतिष्ठित समिति (जिसमें प्रधानमंत्री, गृह मंत्री, लोकसभा अध्यक्ष और संबंधित राज्य के मुख्यमंत्री शामिल हों) द्वारा चयन प्रक्रिया पर विचार किया जाना चाहिए।

2.विवेकाधीन शक्तियों का स्पष्टीकरण और सीमाएं:

- संविधान विशेषज्ञों और अंतर-राज्य परिषद द्वारा राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों की सीमा और दायरे को और स्पष्ट किया जाना चाहिए ताकि उनके मनमाने उपयोग को रोका जा सके।
- विधेयकों पर सहमति के संबंध में एक निश्चित समय-सीमा निर्धारित की जानी चाहिए, जिसके भीतर राज्यपाल को या तो सहमति देनी होगी, उसे अस्वीकार करना होगा या राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित करना होगा।

3.न्यायिक हस्तक्षेप को मजबूत करना:

- न्यायपालिका को राज्यपालों के कार्यों की संवैधानिक वैधता की अधिक सक्रिय रूप से समीक्षा करनी चाहिए, खासकर जब वे मनमानी या राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित प्रतीत हों।
- एस.आर. बोम्मई वाद के सिद्धांतों को न केवल अक्षरशः बल्कि उसकी भावना में भी लागू किया जाना चाहिए।

4.आयोगों की सिफारिशों का कार्यान्वयन: सरकारिया आयोग, राष्ट्रीय संविधान कार्यप्रणाली समीक्षा आयोग (NCRWC) और पुंछी आयोग द्वारा की गई प्रासंगिक सिफारिशों को ईमानदारी से लागू किया जाना चाहिए। इन सिफारिशों में राज्यपाल को हटाने की प्रक्रिया (इंपीचमेंट जैसी), पद पर कार्यकाल की सुरक्षा और कार्यकाल पूरा होने के बाद किसी अन्य सरकारी पद पर नियुक्ति पर प्रतिबंध शामिल हैं।

5.आचार संहिता का विकास:

- राज्यपालों के लिए एक स्पष्ट आचार संहिता विकसित की जानी चाहिए जो उन्हें सार्वजनिक बयानों, राजनीतिक टिप्पणी और राज्य सरकार के मामलों में अनावश्यक हस्तक्षेप से परहेज करने का निर्देश दे।
- राज्यपाल को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वह राज्य के संवैधानिक प्रमुख के रूप में निष्पक्ष रहें और केंद्र के एजेंट के रूप में कार्य न करें।

6.अंतर-राज्य परिषद को सशक्त बनाना: केंद्र-राज्य संबंधों से संबंधित विवादों को सुलझाने के लिए अंतर-राज्य परिषद को अधिक प्रभावी और नियमित रूप से उपयोग किया जाना चाहिए। यह राज्यपाल की भूमिका से संबंधित मुद्दों पर चर्चा और सहमति बनाने के लिए एक मंच प्रदान कर सकता है।

10. आगे की राह:- राज्यपाल की भूमिका और भारतीय संघवाद पर इसके प्रभाव के संबंध में आगे के शोध के लिए कई रास्ते खुले हैं:

- **गुणात्मक केस स्टडीज का विस्तार:** विभिन्न राज्यों में राज्यपालों के विशिष्ट हस्तक्षेपों का अधिक विस्तृत गुणात्मक विश्लेषण, जिसमें कानूनी, राजनीतिक और सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का अध्ययन शामिल हो।
- **तुलनात्मक संघीय अध्ययन:** अन्य संघीय प्रणालियों (जैसे ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, जर्मनी) में संवैधानिक प्रमुखों की भूमिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना ताकि भारतीय संदर्भ के लिए सर्वोत्तम प्रथाओं और सीखों की पहचान की जा सके।
- **सार्वजनिक धारणा का सर्वेक्षण:** जनता की राय और राज्यपाल के पद पर उनके विश्वास का आकलन करने के लिए बड़े पैमाने पर सर्वेक्षण करना, विशेष रूप से केंद्र-राज्य विवादों में उनकी भूमिका के संबंध में।
- **संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता का मूल्यांकन:** क्या राज्यपाल के पद की शक्ति और कार्यप्रणाली को स्पष्ट करने के लिए संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता है, इस पर गहन कानूनी और संवैधानिक विश्लेषण।
- **विशिष्ट क्षेत्रों पर प्रभाव का अध्ययन:** शिक्षा, कानून और व्यवस्था, स्थानीय स्वशासन जैसे विशिष्ट

क्षेत्रों पर राज्यपाल के हस्तक्षेप के दीर्घकालिक प्रभावों का विश्लेषण।

- **राष्ट्रपति की भूमिका का विश्लेषण:** उन मामलों में जहां राज्यपाल विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित करते हैं, वहां राष्ट्रपति द्वारा लिए गए निर्णयों और उनके निहितार्थों पर एक विस्तृत अध्ययन।
- **तकनीकी प्रगति और राज्यपाल की भूमिका:** डिजिटल युग में राज्यपाल की भूमिका, विशेष रूप से संचार और शासन में, कैसे विकसित हो सकती है, इसका अध्ययन।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. लक्ष्मीकांत, एम. (2021). भारत की राजव्यवस्था (6वां संस्करण), मैक्ग्रा हिल एजुकेशन।
2. बसु, दुर्गा दास (2018). भारत का संविधान: एक परिचय, लेक्सिस नेक्सिस।
3. Tillin, Louise (2019). Indian Federalism, Oxford University Press. (2014 के बाद के बदलावों पर विशेष)।
4. ऑस्टिन, ग्रेनविले (1999). The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. सिंह, एम.पी. और सक्सेना, रेखा (2011). Indian Politics: Constitutional Foundations and Institutional Functioning, PHI Learning.
6. कश्यप, सुभाष सी. (2017). हमारी संसद, नेशनल बुक ट्रस्ट।
7. Noorani, A.G. (2011). Constitutional Questions in India: The President and the Governor, Oxford University Press.
8. फाड़िया, बी.एल. (2020). भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स।
9. सरकारिया आयोग की रिपोर्ट (1988): केंद्र-राज्य संबंधों पर ऐतिहासिक सिफारिशें।
10. पुंछी आयोग की रिपोर्ट (2010): राज्यपाल की भूमिका और कार्यकाल की सुरक्षा पर विस्तृत अध्ययन।
11. वेंकटचलैया आयोग (NCRWC, 2002): संविधान के कामकाज की समीक्षा पर राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट।
12. भारत का संविधान: विशेषकर अनुच्छेद 153 से 163, अनुच्छेद 200, 201 और 356।
13. एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994): अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग पर अंकुश लगाने वाला ऐतिहासिक फैसला।
14. नबाम रेबिया बनाम उपाध्यक्ष (2016): अरुणाचल प्रदेश में राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों पर सुप्रीम कोर्ट का निर्णय।
15. जीएनसीटीडी (GNCTD) बनाम भारत संघ (2018/2023): दिल्ली उपराज्यपाल और निर्वाचित सरकार के बीच शक्तियों के बंटवारे पर।
16. पंजाब राज्य बनाम प्रधान सचिव (2023): राज्यपाल द्वारा विधेयकों को अनिश्चित काल तक रोकने पर सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणी।
17. Economic and Political Weekly (EPW): "The Governor's Office: A Political Tool or Constitutional Sentinel?" (विभिन्न संस्करण 2014-24)।
18. Observer Research Foundation (ORF): "The Governor's Office: An Embattled Constitutional Entity" (शोध लेख)।
19. PRS Legislative Research: "Role of the Governor in the Legislative Process" (एनालिटिकल रिपोर्ट)।
20. Mainstream Weekly: "Governor in Indian Federalism: Post-2014 Trends" (समकालीन विश्लेषण)।
21. Jain, M.P. (2023). Indian Constitutional Law (8th Edition), LexisNexis. (यह पुस्तक राज्यपाल की शक्तियों पर सबसे विस्तृत कानूनी विश्लेषण प्रदान करती है)।
22. Hasan, Zoya (2022). Ideology and Organization in Indian Politics, Oxford University

Press. (2014 के बाद की राजनीति और संघवाद पर प्रभाव)।
23. Krishnaswamy, Sudhir (2011). Democracy and Constitutionalism in India, Oxford University Press.
24. Sarkar, Siuli (2018). Public Administration in India, PHI Learning. (राज्यपाल और मुख्यमंत्री के प्रशासनिक संबंधों के लिए)।
25. Adeney, Katharine (2016). Federalism and Conflict Resolution in India, Routledge.
26. शिव सेना बनाम भारत संघ (2023) - 'महाराष्ट्र राजनीतिक संकट': सुप्रीम कोर्ट ने राज्यपाल द्वारा फ्लोर टेस्ट बुलाने के निर्णय की आलोचना की।
27. केरल राज्य बनाम राज्यपाल (2023): सुप्रीम कोर्ट का निर्देश कि राज्यपाल विधेयकों को अनिश्चित काल तक नहीं रोक सकते।
28. तमिलनाडु राज्य बनाम राज्यपाल (2023): विधानसभा द्वारा दोबारा पारित विधेयकों पर राज्यपाल की सहमति की अनिवार्यता पर।
29. अभिराम सिंह बनाम सी.डी. कोमचेन (2017): धर्म और राजनीति के मेल पर संवैधानिक नैतिकता का विश्लेषण।
30. Chandrachud, Abhinav (2021). "The Role of the Governor in Government Formation", Journal of Indian Law and Society.
31. Palshikar, Suhas (2017). "India's Second Dominant Party System", Economic and Political Weekly. (2014 के बाद संघवाद के बदलते स्वरूप पर)।
32. Vaishnav, Milan (2019). "The BJP in Power: Indian Democracy and Religious Nationalism", Carnegie Endowment for International Peace.
33. Aiyar, Yamini (2021). "Maximum Government, Minimum Federalism", The India Forum.
34. Journal of Parliamentary Information (LOK SABHA): राज्यपाल के अभिभाषण और संवैधानिक गरिमा पर विशेष लेख।
35. Constituent Assembly Debates (CAD): विशेषकर खंड VIII, जहाँ बी.आर. अंबेडकर ने राज्यपाल को 'केवल एक औपचारिक प्रमुख' (Ceremonial Head) बताया था।
36. द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (2nd ARC) - 15वीं रिपोर्ट: "State and District Administration"।
37. 15वें वित्त आयोग की रिपोर्ट: केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय संघर्ष और राज्यपाल की अप्रत्यक्ष भूमिका।
38. The Hindu Editorial Collection (2014-2024): "The Office of Governor: Misuse and Reform".
39. Indian School of Public Policy (ISPP): "Federalism in the Age of National Dominance".
40. NITI Aayog Working Papers: सहकारी संघवाद (Cooperative Federalism) और उसमें आने वाली बाधाओं पर शोध।